ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2021; 7(7): 22-25
www.allresearchjournal.com
Received: 17-05-2021
Accepted: 19-06-2021

सतीश कुमार श्रीवास्तव
शोधार्थी, चेन्नई, तमिलनाडु, भारत

Corresponding Author:
सतीश कुमार श्रीवास्तव
शोधार्थी, चेन्नई, तमिलनाडु, भारत

सूरदास के साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन

सतीश कुमार श्रीवास्तव

सारांश
साहित्य अगर समाज का दर्पण है तो साहित्यकार उस दर्पण का निर्माता जिसमें हम तत्कालीन समाज के प्रतिबिंब को देख सकते हैं । हालांकि यहाँ साहित्यकार का मुख्य उद्देश्य समाज-दर्शन का दर्पण तैयार करना नहीं होता किंतु सामाजिक प्राणी और भाषिक पशु होने के कारण वह अनायास ही कुछ ऐसा सृजन कर देता है जो तत्कालीन समाज और संस्कृति के अप्रमाणित दस्तावेज हो जाते हैं । भाषा, समाज और संस्कृति के साथ घनिष्ठ संबंध होने के कारण लाख सावधानी बरतने के बावजूद कोई साहित्यकार अपने साहित्य में तत्कालीन समाज का प्रतिबिंब उकेरने से नहीं बच सकता। यहीं कारण है कि कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि सूरदास का साहित्य, भक्ति साहित्य के साथ-साथ अपने समय का सामाजिक दस्तावेज भी माना जा सकता है । सूरदास ने भक्ति के साथ-साथ अपने साहित्य में तत्कालीन समाज की संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था दोनों का विस्तृत वर्णन किया है । उनका साहित्य प्रेम, भक्ति और वात्सल्य का संगम ही नहीं समाज एवं संस्कृति का दोआब भी है ।

कूटशब्द : साहित्य, भक्ति, पुष्टिमार्ग, समाजशास्त्र

प्रस्तावना:
भक्तिकाल के महत्वपूर्ण कवि और कृष्णभक्ति काव्य के स्तम्भ के रूप में सूरदास जी का काव्य अपने समय और समाज की व्यापक गतिविधियों को समेटने के साथ-साथ उस समय की आशाओं और आकांक्षाओं का भी प्रतिनिधित्व करने का कार्य करते हैं । सूरदास की भक्ति भावना मुख्यतः दो रूपों में प्रकट हुई है । पहला रूप विनय, दैन्य, दास्य व सख्य भाव, और आत्मनिवेदन का है तो दूसरा रूप कृष्ण की लीला गान का है । विनय के जो ढेरों पद सूर ने रचे हैं उनका अपना लौकिक सन्दर्भ है। विनय के इन पदों के भीतर जिस दैन्य और आत्मग्लानि के भाव को अभिव्यक्ति मिली है, हमें यह देखने की जरूरत है कि आखिर उसका आधार क्या है*?* उनके काव्य में उस समय का समय और समाज कहाँ और किस रूप में उपस्थित है । इस तथ्य को रेखांकित किया जाना चाहिए कि सूरदास का आत्मनिवेदन मात्र 'उनका ही' नहीं है, बल्कि उन्होंने अपने माध्यम से उस पूरे युग की भावना को व्यक्त किया है । उनका आत्म निवेदन महज 'एक भक्त मात्र का आत्मनिवेदन' नहीं है, बल्कि इसे व्यापक रूप में देखे जाने की जरूरत है । सूरदास की भक्ति की असली पहचान करने के लिए हमे उनकी रचनाओं को उस युग के सामजिक संदर्भों से जोड़कर देखना और समझना होगा । सूरदास जी ने अपने काव्य में मनुष्यता के सौन्दर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण पक्ष को दिखाकर सतत चलने वाले जीवन के प्रति राग को जगाया है ।

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे । अपने गुरु से उन्होंने भक्तिमार्ग में भगवत भक्ति के प्रेममय स्वरूप प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा पायी थी । वल्लभाचार्य द्वारा चलाए गए'पुष्टिमार्ग' में दीक्षित होकर सूरदास एवं उनके साथ के कवियों ने कृष्णभक्ति साहित्य का सृजन कार्य

किया । पुष्टिमार्ग का अर्थ है - भगवान का अनुग्रह । भगवान के अनुग्रह (पोषण) के बिना जीव को मुक्ति नहीं मिल सकती । भगवान के पोषण अर्थात अनुग्रह को अधिक महत्व देने के कारण ही इस मत को 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है, और सूरदास को इन कवियों का प्रतिनिधि होने के कारण 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा जाता है । ईश्वर का अनुग्रह पाकर जीवात्मा से परमात्मा का एकाकार हो जाता है । इस आनंदमयी एकाकार स्थिति की प्राप्ति ही मुक्ति है । 'मुक्ति' की प्राप्ति के लिए भक्ति ही एकमात्र साधन है । मर्यादा भक्ति में फल प्राप्ति की आसक्ति बनी रहती है किन्तु पुष्टि भक्ति में किसी प्रकार के फल की आकांक्षा नहीं होती । सूरदास ने वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त मान्यताओं का कहाँ तक अनुसरण किया है? इस प्रसंग में यह बात बराबर ध्यान में रखनी होगी की सूरदास दार्शनिक आचार्य न होकर एक भक्त हैं । सूर वल्लभाचार्य की मान्यताओं को लकीर के फकीर की भांति अनुपालन नहीं करते बल्कि अपनी मौलिक प्रतिभा से भक्ति का सहज और लोकप्रचलित मार्ग प्रस्तुत करते हैं । सूर ने भक्ति के भाव और रस का एकाकार करते हुए इसके माध्यम से जनजीवन में एक नयी शक्ति का संचार किया । सूरदास के पदों की आलोचना करते हुए डॉ. शिवकुमार मिश्र लिखते हैं - "सूर के इन पदों के भीतर से उनकी स्वस्थ सामाजिक चेतना, उनकी प्रखर मानवीय चिंता भी व्यक्त होती है । ये पद हमें केवल मुग्ध ही नहीं करते, सोचने के लिए प्रेरित करते हैं । मात्र सांप्रदायिक चर्चा से ही इन्हें नहीं निपटाया जा सकता ।"[1]

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित पुस्तकों की विवरण तालिका में सूरदास के 16 ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है । इनमें सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी, नल-दमयन्ती ब्याहलो के अतिरिक्त दशमस्कंध टीका, नागलीला, भागवत्, गोवर्धन लीला, सूरपचीसी, सूरसागर सार, प्राणप्यारी, आदि ग्रन्थ शामिल हैं । हालांकि इनमें प्रारम्भ के तीन ग्रंथ ही महत्त्वपूर्ण समझे जाते हैं, जहां तक साहित्य लहरी का प्रश्न है, इसकी प्राप्त प्रति में काफी प्रक्षिप्तांश भी जुड़े हुए हैं । सूरसागर सूरदासजी का प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसमें प्रथम नौ अध्याय संक्षिप्त है, पर दशम स्कन्ध का बहुत विस्तार हो गया है । इसमें भक्ति की प्रधानता है । इसके दो प्रसंग "कृष्ण की बाल-लीला' और "भ्रमर-गीतसार' अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं । सूर के काव्य में सीधे तौर पर सामाजिक चिंता उजागर नहीं होती, लेकिन प्रछन्न तौर पर इसमें समाज की कई विसंगतियों और वर्जनाओं पर चोट किया गया है । सूर की लोकचेतना का पहला स्तर वहाँ दिखाई देता है, जहाँ वे शहरी जीवन के बनावटीपन पर करारा व्यंग्य करते हैं -

'मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे'

सूर ने अपने काव्य में स्त्री मुक्ति के प्रश्न को बड़े ही सहजता से अपने काव्य में स्थान दिया है । सूर की गोपियाँ सामाजिक वर्जनाओं को ताक पर रख कृष्ण के साथ रास लीला करती हैं । उनके यहाँ स्त्री और पुरुष में बराबरी का भाव है, और साथ ही सूर की गोपियाँ अधिक तार्किक भी हैं जो उद्धव से कई तरीकों से वाद-विवाद करती हैं ।

सूर का काव्य हिंदी साहित्य में 'गोचारण परंपरा' का एक महत्वपूर्ण और उत्कृष्ट काव्य है । सूर ने गोचारण अर्थव्यवस्था की अनेक समस्याओं का प्रतीकात्मक चित्रण कर तत्कालीन सामाजिक परिवेश की समस्या को व्यक्त किया है । सूरदास की कविता सामंतवादी वातावरण में सामाजिक समानता का भाव भी स्थापित करती है । सूर ने कृष्ण और ग्वालों के समतामूलक संबंध के माध्यम से वर्गीय समानता का भाव स्थापित किया है । इसके अतिरिक्त वे रूपकों के माध्यम से अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं । सूर के काव्य का विवेचन करते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं - "सूरदास सामाजिक यथार्थ और जीवन के अनुभवों का चित्रण प्रायः रूपकों की मदद से करते हैं । 'जनम साहिबी करत गयो', हरि हौं सब पतितनी पतिनेश' 'साँचो सो लिखहार कहावै', 'हरि हौं ऐसे अमल कमायौं', 'प्रभुजू यों कीन्ही हम खेती' आदि पदों में रूपक के माध्यम से ही उस काल की सामंती सत्ता, सामाजिक व्यवस्था, ग्राम प्रबंध, भूमि व्यवस्था और किसान जीवन के अनुभवों का चित्रण हुआ है । सूर के लिए रूपक केवल एक अलंकार नहीं है । वह यथार्थ और अनुभव की पुनर्रचना तथा अभिव्यक्ति की विशिष्ट पद्धति है, जीवनानुभाव को काव्यानुभव बनाने का माध्यम है और काव्यनुभूति के सम्प्रेषण का सर्जनात्मक साधन है ।"[2] यहाँ मैनेजर पाण्डेय ने सूर के काव्य में निहित समय और समाज के सत्य को पकड़ने का कार्य किया है । उन्होने बताया कि सूर के काव्य में रूपकों के माध्यम से सामाजिक सत्य उद्घाटित हुए हैं ।

सूरदास जी ने भारतीय काव्य परंपरा से कृष्ण कथा को अपने काव्य का साधन बनाते हुए अथवा यो कहें कि कृष्ण की लोकप्रचलित कथा का रचनात्मक उपयोग करते हुए सहज मानवीय अभिव्यक्ति का साधन बना दिया है । इस संबंध में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं - "सूरदास मानवीय सम्बन्धों और मानव जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति के दौरान ही मिथकीय कथा को इतिहास से जोड़ते हैं ।; क्योंकि मानव जीवन के अनुभव और मानवीय संबंध समाज के इतिहास से प्रभावित होते हैं । +++ वे अपने युग के जीवन यथार्थ, मानवीय संबंध, भाव और विचार आदि की अभिव्यक्ति यथार्थवादी ढंग से भी करते हैं और प्रतिकात्मक

ढंग से भी । मिथकीय चेतना और ऐतिहासिक चेतना की एकता से भक्तिकालीन काव्यचेतना का निर्माण हुआ है । सूरदास के काव्य में यही काव्यचेतना प्रकट हुई है ।"[3] उनका यह कथन सूर के भक्तिकालीन काव्य चेतना को खोलने का कार्य करता है, और हमें एक नयी दृष्टि से देखने की ओर संकेत करता है, जिससे उनके काव्य का समाजशास्त्रीय पहलू उजागर हो सके ।

सूर के काव्य में भ्रमर गीत का बड़ा महत्व है । भ्रमरगीतों के माध्यम से वे परोक्ष रूप से जीवन, जगत और समाज के बारे में कई महत्वपूर्ण बात कहते नजर आते है । भ्रमर गीत के बहाने वे यहाँ प्रेम और ज्ञान के बीच के सामाजिक ताने-बाने को सामने रखते हैं । उद्धव मथुरा में थे, और उन्हें अपने ज्ञान का गर्व था । कृष्ण ने उनके ज्ञान के गर्व को खण्डित करने के लिए उनसे कहा कि वे अपने महान ज्ञान का उपदेश गोपियों को दें । और यदि गोपियाँ मधुर भक्ति को छोडकर योग एवं ज्ञान का मार्ग स्वीकार कर लें, तो उद्धव के पथ की सार्थकता सिद्ध हो जायेगी । उद्धव गोपियों के पास गये, और उन्हें अपने ज्ञान से प्रभावित भी किया । इससे वे गोपियों के लिए वे सम्मान के पात्र तो बन गये, परंतु गोपियों पर उनका रंग नहीं चढ़ सका । उनके उपदेशों को सुनकर गोपियाँ को चिढ़ाने की इच्छा हुई । गोपियाँ विभिन्न तर्कों और उदाहरण के माध्यम से भ्रमर को संबोधित करते हुए परोक्ष रूप में उद्धव के अहंकार का मर्दन करती हैं, और उसे रसमयी मधुर भक्ति की दिशा में प्रेरित करती हैं । कुल मिलाकर देखा जाए तो भ्रमरगीत का उद्देश्य 'गोपीभाव' की भक्ति की सार्थकता को स्पष्ट करना है ।

भ्रमरगीत विषयक एक लम्बी परम्परा का दर्शन करने पर यह स्पष्ट होता है कि सूरदास इस परम्परा के सबसे मार्मिक और प्रतिभासम्पन्न कवि हैं । भ्रमरगीत के पाठ के दौरान इसके विविध आयाम खुलने लगते हैं । पहली बात कि इसमें पाठकों की संवेदना को जगाने और उस पर चिंतन करने की अद्भुत क्षमता है । गोपियाँ केवल अपनी वाक्चातुरी या व्यंग्य-कथन के लिए विशिष्ट नहीं हैं, कृष्ण के प्रति उनका अनन्य समर्पण मर्मस्पर्शी है । भ्रमर गीत के माध्यम से सूर ने राजा-प्रजा, निर्गुण-सगुण, ज्ञान और प्रेम के द्वंद्व को सामने रखा है । यह कृष्ण के बहाने सत्ता के चरित्र का उद्घाटन करता है, वहीं उद्धव के बहाने निर्गुण और सगुण के द्वंद्व को उभारते हैं । भ्रमरगीत में गोपियों का बेबाकी से जवाब दिए जाने और अपनी स्थिति पर गर्व करने का एक स्त्रीवादी पाठ हो सकता है । इस संबंध में शिवकुमार मिश्र ने थोड़ा संकेत दिया है - "कृष्ण लौटकर नहीं आते, तो नहीं आते और गोपियाँ मथुरा नहीं जाती तो नहीं जाती; नारी अस्मिता का, नारी के आत्मसम्मान का यह गरिमामय चित्र सूर ही अंकित कर सकते थे, और उन्होने किया भी है, पूरे विस्तार से, पूरी निष्ठा से किया है ।"[3]

गोपियों का स्वच्छंद प्रेम उनके चयन की स्वतन्त्रता का प्रमाण देती है और उद्धव से तर्क-वितर्क भी उनके चेतन, तार्किक और जागरूक होने का प्रमाण देता है । यह संश्लिष्ट रूप में काव्य में व्यक्त हुआ है । सूरदास की काव्य-प्रतिभा इसमें पूरे चरम पर है और उन्होंने मँजी हुई भाषा और जनप्रिय शैली में अपने प्रतिपाद्य को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है । भ्रमरगीत परम्परा में सूरदास के भ्रमरगीत की चर्चा करते हुए यह कथन उचित प्रतीत होता है कि 'सूरदास का भ्रमरगीत वास्तव में विरह एवं प्रेम का एक अगाध पयोधि है, जिसमें व्यंग्य एवं उपालम्भ की लघु लहरें हैं ।' भ्रमरगीत की विशेषता बताते हुए मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं - "सूरदास ने मन और बुद्धि के द्वंद्व में मन को, भावना को या अनुभूति को ही विशेष महत्व दिया है, जिससे जीवन सृजनशील बनता है । कोरा बुद्धिवाद मानव के लिए घातक है। भ्रमरगीत की दूसरी विशेषता है सहज नैसर्गिक प्रवृत्तिमूलक जीवन की स्वीकृति और निषेधों से संचालित निवृत्तिमूलक जीवन की अस्वीकृति । तीसरी विशेषता है नारी के मन में पुरुष के लिए सर्वोत्तम समर्पण का भाव । चौथी विशेषता है प्रेम का सहज चरम विकास । भ्रमरगीत कि पाँचवीं विशेषता है, मानवीय मनोरागों का उदात्तीकरण और कृष्णार्पण ।"[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि भ्रमरगीत किस प्रकार शास्त्र के बरक्स लोक को स्थापित करते हुए ग्राम्य संस्कृति के सहज जीवनचर्या को स्थापित करता है ।

सूरदास ने सामाज को व्यंजित करने के लिए किसी विशेष पदों की' रचना नहीं की है, लेकिन अपने आराध्य के सामने अपने समय की विसंगति को भी दिखला देते है । उनके यहाँ तत्कालीन सामंती समाज व्यवस्था का नंगा चरित्र सामने आ जाता है, जिसमें ठाकुर लुटेरा है, कोतवाल दगाबाज और पटवारी कपटी है, जो झूठी बही लिखता है । लूट के इस खेल का चित्रण उनके यहाँ इस प्रकार है -

'मोहरिल पाँच साथ करि दिने, तिनकी बड़ी विपरीति ।
जिम्मे उनके, मांगै मोतै, यह तो बड़ी अनीति
पाँच-पचीस साथ अगवानी, सब मिली काज बिगारै
सुनी तागीरी, बिसरि गई सुधि, मो तजि भए नियारे । ...' - सूरसागर, 1/143

इसी प्रकार सूरदास जी ने सामंती व्यवस्था के अन्य पहलुओं जैसे - ऋण व्यवस्था, किसानी जीवन, लगान, सूदखोरी, पशुपालन, ग्राम्य और शहरी जीवन का अंतर आदि के कई चित्र हमारे सामने पूरी जीवंतता के साथ प्रस्तुत किया है ।

उनके यहाँ सामान्य जनजीवन और उसमें प्रकृति के साहचर्य का अत्यंत मनोरम चित्रण देखने को मिलता है । कुल मिलाकर देखा जाए तो कहना न होगा कि सूरदास के काव्य में तत्कालीन ग्रामीण गोचारण समाज की सभी स्थितियों का कमोबेश चित्रण मिलता है, जो उन्हें भक्त कवि तक ही सीमित न रखकर लोक द्रष्टा के रूप में स्वीकार करता है । एक बात अवश्य है कि यह अधिकांशतः विभिन्न रूपकों और प्रतीकों के माध्यम से ही व्यक्त हुआ है । निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि सूरदास के काव्यों को अब तक भक्ति के चश्में ही देखा जाता रहा है, इसे नए नए संदर्भों में देखने से इसके कई और अर्थ खुलने की संभावनाएं निरंतर बनी हुई हैं ।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1) भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य; शिवकुमार मिश्र; अभिव्यक्ति प्रकाशन; पृ.135
2) भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य; मैनेजर पाण्डेय; वाणी प्रकाशन; पृ. 298
3) वही; पृ. 280
4) भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य; शिवकुमार मिश्र; अभिव्यक्ति प्रकाशन; पृ.139
5) भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य; मैनेजर पाण्डेय; वाणी प्रकाशन; पृ. 206